हमारी मानसिक दासता
और
उसके कारण

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०)

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है"

हमारी मानसिक दासता और उसके कारण

हुकूमत और शासन ग़लबा और प्रभुत्व की दो क़िस्में हैं। एक मानसिक और अख़लाक़ी ग़लबा, दूसरा राजनीतिक और भौतिक (माद्दी) ग़लबा। पहली क़िस्म का ग़लबा यह है कि एक क़ौम अपनी वैचारिक ताक़तों में इतनी तरक़्क़ी कर जाए कि दूसरी क़ौमें उसके विचारों को दिल से स्वीकार लें। उसी के विचारों, उसी की आस्थाएँ, उसी के दृष्टिकोण दिमाग़ों पर छा जाएँ। ज़ेहन उसी के साँचे में ढलें, सभ्यता उसी की सभ्यता हो। ज्ञान उसी का ज्ञान हो, उसी की खोज को खोज समझा जाए और हर वह चीज़ असत्य ठहराई जाए जिसको वह असत्य ठहराए। ग़लबा या प्रभुत्व की दूसरी क़िस्म यह है कि अगर एक क़ौम अपनी भौतिक ताक़तों की दृष्टि से इतनी ताक़तवर हो जाए कि दूसरी क़ौमें उसकी तुलना में अपनी राजनीतिक आज़ादी को क़ायम न रख सकें और पूरे तौर पर या किसी-न-किसी हद तक वह दूसरी क़ौमों के आर्थिक संसाधनों पर क़ब्ज़ा कर ले और उनकी राष्ट्रीय व्यवस्था पर हावी हो जाए। इसी तरह ग़ुलामी की भी दो क़िस्में हैं। एक बौद्धिक या ज़ेहनी ग़ुलामी, दूसरी राजनीतिक ग़ुलामी। इन दोनों क़िस्मों के गुणों को उन गुणों की प्रतिच्छाया समझ लीजिए जो ऊपर प्रभुत्व व ग़लबे के संबंध में बयान किए गए हैं।

ये दोनों क़िस्में एक पहलू से अलग-अलग हैं। ज़रूरी नहीं है कि जहाँ मानसिक प्रभुत्व हो वहाँ राजनीतिक प्रभुत्व भी हासिल हो और न यह ज़रूरी है कि जहाँ राजनीतिक प्रभुत्व हासिल हो वहाँ मानसिक प्रभुत्व भी हासिल हो। किन्तु क़ुदरत का क़ानून यही है कि जो क़ौम अक़्ल और चिन्तन से काम लेती और खोज एवं रहस्योद्घाटन की राह में अग्रसरता दिखाती है, उसको बौद्धिक उन्नति के साथ-साथ भौतिक उन्नति भी नसीब होती है और जो क़ौम चिन्तन-मनन के मैदान में आगे बढ़ना छोड़ देती है वह बौद्धिक

पतन के साथ भौतिक गिरावट में भी पड़ जाती है। फिर क्योंकि प्रभुत्व नतीजा है ताक़त का और ग़ुलामी नतीजा है कमज़ोरी का, इसलिए बौद्धिक एवं भौतिक हैसियत से हीन और कमज़ोर क़ौमें अपनी हीनता और कमज़ोरी में जितना ज़्यादा बढ़ जाती हैं, उतनी ही ज़्यादा वे दासता और ग़ुलामी के लिए तत्पर होती चली जाती हैं और ताक़तवर-मानसिक और भौतिक दोनों हैसियतों से ताक़तवर-क़ौमें उनकी बुद्धि और उनके शरीर दोनों पर हुकूमत करने लग जाती हैं।

मुसलमान आजकल इसी दोहरी ग़ुलामी में फँसे हुए हैं। कहीं दोनों तरह की ग़ुलामी पूरी तरह छाई हुई है और कहीं राजनीतिक ग़ुलामी कम और मानसिक ग़ुलामी ज़्यादा है। दुर्भाग्य से इस समय कोई इस्लामी आबादी ऐसी नहीं है, जो सही मानी में राजनीतिक और मानसिक दृष्टि से पूरी तरह आज़ाद हो। जहाँ उनको राजनीतिक स्थायित्व और स्वाधीनता हासिल भी है, वहाँ वे मानसिक ग़ुलामी से आज़ाद नहीं है। उनके शिक्षा-संस्थान, उनके कार्यालय, उनके बाज़ार, उनका समाज, उनके घर यहाँ तक कि उनके बदन तक अपने मुँह से गवाही दे रहे हैं कि उनपर पश्चिम की संस्कृति, पश्चिम के विचार, पश्चिम के ज्ञान व कलाएं शासन कर रही हैं। पश्चिम के दिमाग़ से सोचते हैं, पश्चिम की आँखों से देखते हैं, पश्चिम की बताई हुई राहों पर चलते हैं चाहे उनको इसकी समझ हो या न हों, बहरहाल यह भ्रम उनके दिमाग़ों पर छाया हुआ है कि सत्य और सही वह है जिसको पश्चिम सत्य समझता है और ग़लत व असत्य वह है जिसको पश्चिम ने ग़लत ठहराया दिया है। सत्य, सच्चाई, सभ्यता, शिष्टाचार, इनसानियत, संस्कृति हर एक का पैमाना उनके यहाँ वही है जो पश्चिम ने तय कर रखा है। अपने धर्म और आस्था (ईमान), अपने विचार और चिन्तन, अपनी सभ्यता और शिष्टता व अपनी सुशीलता, अपनी नैतिकता और शिष्टाचार को वे उसी मेयार पर जाँचते हैं। जो चीज़ उस मेयार पर पूरी उतरती है उसे सही समझते हैं, सन्तुष्ट होते हैं, गर्व करते हैं कि हमारी फ़ुलाँ चीज़ पश्चिम के पैमाने पर उतर आई और जो चीज़ उस पैमाने पर पूरी नहीं उतरती, उसे जाने-अनजाने में ग़लत मान लेते हैं। कोई खुले आम उसको ठुकरा देता है, कोई दिल

ुटता है और कोशिश करता है कि किसी-न-किसी तरह खींचतान कर उसे ाश्चिमी पैमाने के मुताबिक़ कर दे।

जब हमारी आज़ाद क़ौमों का हाल यह है तो जो मुस्लिम क़ौमें पश्चिमी क़ौमों के अधीन और उनकी ग़ुलाम हैं उनकी ज़ेहनी ग़ुलामी का हाल क्या ूछना। इस दासता और ग़ुलामी की वजह क्या है। इसको बयान करने के लेए अलग-से किताब लिखी जा सकती है, लेकिन संक्षेप में इसको कुछ शब्दों में बयान किया जा सकता है।

मानसिक प्रभुत्व एवं ग़लबे की बुनियाद हक़ीक़त में वैचारिक और इल्मी तहक़ीक़ पर क़ायम होती है। जो क़ौम इस राह में आगे बढ़ती है, वही दुनिया की मार्गदर्शक और क़ौमों की नायक बन जाती है और उसी के विचार दुनिया र छा जाते हैं और जो क़ौम इस राह में पीछे रह जाती है उसे दूसरों के ीछे चलनेवाला बनना पड़ता है। उसके विचार और धारणाओं में यह ताक़त बाक़ी नहीं रहती कि वह दिमाग़ों पर अपना प्रभुत्व क़ायम रख सकें। जो क़ौम हालात के तक़ाज़ों के मुताबिक़ नई तहक़ीक़ात और नए रास्ते नेकालती है उसके ताक़तवर विचार और नज़रियों का सैलाब उनको बहा ले ाता है और उनमें इतना बल-बूता नहीं रहता कि अपनी जगह पर बाक़ी ह जाएँ। मुसलमान जब तक ज़माने और हालात के तक़ाज़ों के मुताबिक़ तहक़ीक़ और शोध के काम करते रहे तथा अपने दीन की मूल शिक्षाओं की ोशनी में नए नियम और रास्ते निकालते रहे और इस मैदान में आगे बढ़ते हे तमाम दुनिया की क़ौमें उनके पीछे चलती रहीं। इस्लामी विचारधारा सारे ी इनसानों के अपने बनाए हुए विचारों पर छाई रही। ख़ूबसूरती और दसूरती, अच्छाई और बुराई, ग़लत और सही का जो पैमाना इस्लाम ने नेर्धारित किया वह जाने-अनजाने में तमाम दुनिया की नज़र में पैमाना ठहरा, और सोच-समझकर या मजबूरी की हालत में दुनिया अपने विचारों और ामों को उसी पैमाने के मुताबिक़ ढालती रही। किन्तु जब मुसलमानों में चेन्तन करनेवाले और तहक़ीक़ और शोध करनेवाले लोग पैदा होने बन्द हो ए, जब उन्होंने सोचना और खोजना छोड़ दिया, जब वे हासिल करने और चेन्तन में कोशिशें करने के मार्ग में थक्कर बैठ गए तो मानो उन्होंने ख़ुद

ही दुनिया का मार्गदर्शन करने से इस्तीफ़ा दे दिया। दूसरी ओर पश्चिमी क़ौमें इस मार्ग में आगे बढ़ीं। उन्होंने चिन्तन-मनन की ताक़तों से काम लेना शुरू किया। दुनिया के रहस्य टटोले और क़ुदरत की छिपी हुई ताक़तों के ख़ज़ाने तलाश किए। तो इसका लाज़िमी नतीजा वही हुआ जो होना चाहिए था। पश्चिमी क़ौमें दुनिया की मार्गदर्शक बन गईं और मुसलमानों को उसी तरह उनकी ताक़त के आगे सिर झुका देना पड़ा जिस तरह कभी दुनिया ने स्वयं मुसलमानों की ताक़त के आगे झुकाया था।

चार-पाँच सौ साल तक मुसलमान अपने बुज़ुर्गों के बिछाए हुए बिस्तर पर आराम से सोते रहे और पश्चिमी क़ौमें अपने काम में लगी रहीं। इसके बाद अचानक पश्चिमी ताक़त का सैलाब उठा और एक शताब्दी के अन्दर-अन्दर सारी दुनिया पर छा गया। नींद के मारे आँखें मलते हुए उठे तो देखा कि मसीही यूरोप क़लम और तलवार दोनों से लैस है और दोनों शक्तियों से दुनिया पर राज कर रहा है। एक छोटे से गरोह ने बचाव की कोशिश की, किन्तु उसके पास न क़लम की शक्ति थी न तलवार की। अतः हारती चली गई। रहे क़ौम के ज़्यादातर लोग तो उन्होंने उसी तरीक़े पर अमल किया जो हमेशा से कमज़ोरों का तरीक़ा रहा है। तलवार के ज़ोर, दलील की ताक़त, इल्मी सुबूतों की ताईद ज्ञान-साक्ष्य के समर्थन और आँखों को लुभानेवाला हुस्न और ख़ूबसूरती के साथ जो विचार, दृष्टिकोण और सिद्धान्त पश्चिम से आए, आराम पसन्द दिमाग़ों और डरे सहमे व दबे हुए ज़ेहनों ने उनको ईमान (आस्था) का दर्जा दे दिया। पुरानी मज़हबी आस्थाएँ नैतिक सिद्धान्त और सांस्कृतिक क़ानून जो सिर्फ़ पारम्परिक और रस्मी आधार पर क़ायम रह गए थे इस नए और शक्तिशाली सैलाब में बहते चले गए और एक ग़ैर-महसूस तरीक़े से दिलों में यह भ्रम बैठ गया कि जो कुछ पश्चिम से आता है वही सत्य है और वही किसी चीज़ के सही व पूरा होने का पैमाना है।

पश्चिमी सभ्यता के साथ जिन क़ौमों का टकराव हुआ उनमें से कुछ तो वे थीं जिनकी कोई अपनी स्थाई सभ्यता न थी और कुछ वे थीं जिनके पास अपनी एक सभ्यता तो थी, मगर ऐसी मज़बूत न थी कि किसी दूसरी सभ्यता

के मुक़ाबले में वह अपनी विशेषताओं को क़ायम रखने की कोशिश करती। कुछ वे थीं जिनमें सभ्यता अपने सिद्धान्त में उस आनेवाली सभ्यता से कुछ बहुत ज़्यादा अलग न थी। ऐसी सभी क़ौमें बहुत आसानी से पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंग गईं और किसी बड़े टकराव की नौबत न आने पाई। लेकिन मुसलमानों का मामला इन सब से अलग है। ये एक स्थाई और पूर्ण सभ्यता के मालिक हैं। उनकी सभ्यता अपना एक मुकम्मल क़ानून व उसूल रखती है जो वैचारिक और व्यवहारिक दोनों हैसियतों से ज़िन्दगी के सभी मैदानों पर छाई हुई है। पश्चिमी सभ्यता के बुनियादी उसूल पूरी तरह से इस सभ्यता के ख़िलाफ़ हैं। यही वजह है कि क़दम-क़दम पर ये दोनों सभ्यताएँ एक-दूसरे से टकरा रही हैं और उनके संघर्ष से मुसलमानों के धारणात्मक (एतिक़ादी) और व्यवहारिक जीवन के हर विभाग पर बहुत ही विनाशकारी असर पड़ रहा है।

पश्चिमी सभ्यता ने जिस दर्शन (Philosophy) और विज्ञान की गोद में परवरिश पाई है वह पाँच-छः सौ साल से अनीश्वरवाद, नास्तिकता, धर्महीनता और भौतिकवाद की ओर जा रहे हैं और जिस वक़्त पैदा हुई तभी से मज़हब के साथ उसकी लड़ाई शुरू हो गई। बल्कि यूँ कहना चाहिए कि मज़हब के ख़िलाफ़ अक़्ल और तत्वदर्शिता ही की लड़ाई ने इस सभ्यता को जन्म दिया। यद्यपि ब्रह्माण्ड की जानकारी हासिल करना उसके रहस्यों की खोज, उनके परिपूर्ण क़ानूनों का पता लगाना, उनसे ज़ाहिर होनेवाली हर चीज़ पर चिन्तन-मनन और उनको क्रमबद्ध करके अनुमान और दलील के ज़रिए से नतीजे निकालना, कोई चीज़ भी मज़हब के ख़िलाफ़ नहीं है, किन्तु बदक़िस्मती से नवजागरण (Renaissance) के दौर में जब यूरोप के नवीन विज्ञान-आन्दोलन की शुरूआत हुई तो उसी आन्दोलन का मुक़ाबला उन ईसाई पादरियों से हुआ जिन्होंने अपनी मज़हबी कल्पनाओं को प्राचीन यूनानी दर्शन (Philosophy) और हिकमत की बुनियादों पर क़ायम कर रखा था और जो यह समझते थे कि यदि नई वैज्ञानिक खोजों और वैचारिक प्रयासों (इज्तिहाद) से उन बुनियादों में थोड़ा-सा भी बदलाव आया तो अस्ल मज़हब की इमारत ध्वस्त हो जाएगी। इस ग़लत विचार के असर में आकर

उन्होंने नवीन वैचारिक-आन्दोलन का विरोध किया और उसको रोकने के लिए ताक़त का इस्तेमाल किया। मज़हबी अदालतें (Inquisition) क़ायम की गईं, जिनमें इस आन्दोलन से जुड़े लोगों को कठोर, निर्मम और भयावह सज़ाएँ दी गईं, मगर यह आन्दोलन एक वास्तविक जागरण का नतीजा था, इसलिए हिंसा से दबने के बजाए और बढ़ता चला गया, यहाँ तक कि वैचारिक आज़ादी के सैलाब ने मज़हब की सत्ता का अन्त कर दिया।

शुरू में लड़ाई वैचारिक आज़ादी में यक़ीन रखनेवालों और मज़हबी पेशवाओं के बीच थी, मगर क्योंकि मज़हबी पेशवा मज़हब के नाम पर आज़ाद विचार रखनेवालों से जंग कर रहे थे, इससे बहुत जल्दी इस लड़ाई ने मसीहियत और आज़ाद विचारों के बीच जंग का रूप ले लिया। इसके बाद मज़हब (चाहे वह कोई भी मज़हब हो) इस आन्दोलन का प्रतिद्वन्दी (दुश्मन) ठहरा दिया गया। वैज्ञानिक ढ़ंग से सोचने का यह मतलब लिया गया कि यह विचारशैली मज़हबी विचारशैली की ठीक विलोम है। जो व्यक्ति वैज्ञानिक तरीक़े से ब्रह्माण्ड के मसलों पर ग़ौर करे उसके लिए ज़रूरी है कि मज़हबी दृष्टिकोण से हटकर अपना रास्ता निकाले। ब्रह्माण्ड (कायनात) के मज़हबी दृष्टिकोण की बुनियादी धारणा यह है कि भौतिक-दुनिया (Physical World) की तमाम चीज़ें और उनके ज़रिए से ज़ाहिर होनेवाले प्रभावों की वजह किसी ऐसी ताक़त को ठहरा दिया जाए जो इस दुनिया की पहुँच से बाहर हो। यह दृष्टिकोण चूँकि नवीन वैज्ञानिक आन्दोलन के दुश्मनों का दृष्टिकोण था, इसलिए नवीन-आन्दोलन के पेशवाओं ने ज़रूरी समझा कि ईश्वर या किसी ऐसी ताक़त जो भौतिक गुणों से उच्च हो को माने बग़ैर दुनिया के रहस्यों को हल करने की कोशिश करें और हर उस रीति को अवैज्ञानिक (Unscientific) ठहरा दें जिसमें ईश्वर (ख़ुदा) के वुजूद को मान कर दुनिया की समस्याओं पर नज़र डाली गई हो। इस तरह नए दौर के वैज्ञानिकों और दार्शनिकों में ईश्वर और आत्मा या अध्यात्मिकता और अलौकिकता के ख़िलाफ़ दुश्मनी का एक जज़्बा पैदा हो गया, जो अक़्ल और दलीलों पर आधारित नहीं था, बल्कि साफ़ तौर पर यह ग़ुस्से और प्रतिक्रिया का नतीजा था। वे ईश्वर से इसलिए नफ़रत न करते थे कि दलीलों और

प्रमाणों से उसका मौजूद न होना और उसकी ज़रूरत ही न होना साबित हो गया था। बल्कि उससे इसलिए बेज़ार व खिन्न थे कि वह उनके और उनकी वैचारिक आज़ादी के शत्रुओं का ईश्वर था। बाद की पाँच शताब्दियों में उनकी अक़्ल और विचार, चिन्तन और उनके वैज्ञानिक संघर्ष ने जितना काम किया उसकी बुनियाद यही ग़ैर-अक़्ली भावना थी।

पश्चिमी दर्शन और पश्चिमी विज्ञान दोनों ने जब सफ़र शुरू किया तो यद्यपि उनका रुख़ खुदापरस्ती के बिलकुल विपरीत दिशा में था फिर भी चूँकि वे मज़हबी माहौल में घिरे हुए थे, इसलिए वे शुरूआत में प्रकृतिवाद (Naturalism) को खुदापरस्ती के साथ-साथ निभाते रहे। मगर जैसे-जैसे वे अपने सफ़र में आगे बढ़ते गए प्रकृतिवाद खुदापरस्ती पर हावी होता चला गया। यहाँ तक कि ईश्वर की कल्पना और ईश्वर के साथ हर उस चीज़ का ख़याल जिसे भौतिक दृष्टि से न समझा जा सकता हो उनके यहाँ बिलकुल ग़ायब हो गया और वे इस हद पर पहुँच गए कि पदार्थ की गति के सिवा कोई चीज़ उनकी नज़र में वास्तविक न रही। विज्ञान प्रकृतिवाद का दूसरा नाम बन गया और विज्ञानवादियों और दार्शनिकों का ईमान इस बात पर क़ायम हो गया कि हर चीज़ जो नापी और तौली नहीं जा सकती उसकी कोई हक़ीक़त ही नहीं है।

पश्चिमी दर्शन और विज्ञान का इतिहास इस बयान का गवाह है। डेकार्ट (Descarter) मृत्यु सन् 1650 ई० जो पश्चिमी दर्शन का जनक समझा जाता है, एक ओर तो खुदा (ईश्वर) के वुजूद को मानता है और पदार्थ के साथ आत्मा का स्थायी वुजूद भी मानता है, मगर दूसरी ओर वही है जिसने भौतिक दुनिया की चीज़ों व उनके प्रभावों की व्याख्या यान्त्रिकी (Machenical) ढंग से करने की शुरूआत की और इस विचारशैली की नींव रखी जो बाद में पूरी तरह से भौतिकवाद (Materialism) बन गया। हॉब्स (Hobber सन् 1679 ई०) इससे एक क़दम और आगे बढ़ाकर ऐसी किसी भी ताक़त जो भौतिक गुणों से परे हो खुला विरोध करता है। ब्रह्माण्ड की व्यवस्था और उसकी हर वस्तु को यान्त्रिकीय व्याख्या के क़ाबिल ठहराता है और किसी ऐसी जिस्मानी, रूहानी या अक़्ली ताक़त को नहीं मानता है जो भौतिक

दुनिया में कोई अधिकार रखनेवाली हो। मग़र इसके साथ ही वह ख़ुदा को भी मानता है इस हैसियत से कि ऐसे एक मूल कारण का मानना एक अक़्ली ज़रूरत है। इसी काल में स्पाइनोज़ा (Spinoza), मृत्यु सन् 1677 ई॰, उठा; जो 17वीं शताब्दी में बुद्धिवाद (Rationalism) का सबसे बड़ा दावेदार था। उसने पदार्थ और आत्मा और ईश्वर के बीच कोई अन्तर न रखा। ख़ुदा और संसार को मिलाकर एक जोड़ बना दिया और उसमें ख़ुदा के सर्वाधिकार को स्वीकार न किया। लायबेनिट्ज़ (Laibenitz), मृत्यु सन् 1716 ई॰, और लॉक (Locke), मृत्यु सन् 1704 ई॰, ख़ुदा को मानते थे, लेकिन दोनों का झुकाव प्रकृतिवाद की ओर था।

यह 17वीं शताब्दी का दर्शन था, जिसमें ख़ुदापरस्ती और प्रकृतिवाद दोनों साथ-साथ चल रहे थे। इसी तरह विज्ञान ने भी 17वीं शताब्दी तक पूरे तौर पर नास्तिकता का रंग नहीं अपनाया था। कोपरनिकस (Copernicus), केप्लर (Kepler), गैलीलियो (Galileo), न्यूटन और विज्ञान के दूसरे ध्वजाधारियों में से कोई भी ख़ुदा का इन्कार करनेवाला न था। लेकिन ये ब्रह्माण्ड के रहस्यों की खोज में ईश्वरीय दृष्टिकोण से मुँह फेरकर उन ताक़तों की खोज करना चाहते थे जो इस व्यवस्था को चला रही हैं और उन क़ानूनों (विधानों) को मालूम करने के इच्छुक थे जिनके अन्तर्गत यह व्यवस्था चल रही है। यह ईश्वरीय दृष्टिकोण से मुँह फेरना ही हक़ीक़त में उस नास्तिकता और प्रकृतिवाद का बीज था जो बाद में वैचारिक आज़ादी के पेड़ से पैदा हुआ, लेकिन 17वीं शताब्दी के दार्शनिकों को इसका अन्दाज़ा नहीं था। वे प्रकृतिवाद और ख़ुदापरस्ती में अन्तर करनेवाली कोई रेखा न खींच सके और यही समझते रहे कि दोनों एक साथ निभ सकती हैं।

अठारहवीं शताब्दी में यह हक़ीक़त उभरकर सामने आ गई कि जो विचारशैली ख़ुदा की हस्ती को अनदेखा करके दुनिया की व्यवस्था को जानने की कोशिश करेगी, वह भौतिकता, अधर्मता और नास्तिकता तक पहुँचे बग़ैर न रह सकेगी। इस शताब्दी में जॉन टोलैंड (John Toland), डैविड हॉर्टले (David Hartlay), जोज़ेफ़ प्रीस्टले (Joseph Priestley), वाल्टेयर (Voltaire), ला मैट्री (La Matrie), होलबाख़ (Holback), कैबानिस (Cabanis), डेनिस

डायडेरोट (Denis Diderot), माटेस्क्यू (Montesquieu), रूसो (Rousseau) और ऐसे ही दूसरे आज़ाद ख़याल दार्शनिक एवं वैज्ञानिक पैदा हुए जिन्होंने या तो खुले आम ख़ुदा के वुजूद से इनकार किया या अगर कुछ ने इसे स्वीकार किया भी तो उसकी हैसियत एक संवैधानिक अधिपति (Constitutional Monarch) से अधिक न समझी, जो संसार की व्यवस्था को एक बार शुरू कर देने के बाद एकान्तवासी हो गया और अब व्यवस्था के चलाने में उसकी कोई भागीदारी नहीं है। ये लोग भौतिक दुनिया व पदार्थ और गति के बाहर किसी चीज़ के वुजूद को मानने के लिए तैयार न थे और उनके नज़दीक हक़ीक़त केवल उन्हीं चीज़ों की थी जो हमारे देखने और अनुभव में आती है। ह्यूम (Hume) ने अपने अनुभववाद (Empiricism) और संशयवाद (Scepticism) से इस विचारशैली का ज़बरदस्त समर्थन किया और दर्शन की स्वस्थता के लिए भी अनुभवव या तजरिबा ही को मापदण्ड ठहरा देने पर ज़ोर दिया। बर्कले (Burkeley) ने भौतिकता के बढ़ते हुए इस तूफ़ान का जानतोड़ मुक़ाबला किया, मगर वह इसको न रोक सका। हेगल (Hegel) ने भौतिकवाद के मुक़ाबले में आदर्शवाद (Idealism) को बढ़ावा देना चाहा, मगर ठोस पदार्थ के मुक़ाबले में सूक्ष्मकल्पना चल नहीं पाई। कण्ट (Kant) ने बीच की राह निकाली कि ख़ुदा की हस्ती, आत्मा का होना और इरादे की आज़ादी उन चीज़ों में से नहीं हैं जो हमारे ज्ञान में आ सकें। भौतिक दुनिया में इन चीज़ों का कोई दख़ल नहीं मानी जा सकता, फिर भी उनके होने पर यक़ीन किया जा सकता है और यह होशियारी व दूरदर्शिता (Practical Wisdom) की माँग है कि उनको मान लिया जाए। यह ख़ुदापरस्ती और प्रकृतिवाद के बीच समझौते की आख़िरी कोशिश थी। लेकिन नाकाम हुई। क्योंकि जब अक़्ल और विचारों की गुमराही ने ख़ुदा को केवल भ्रम की पैदावार या ज़्यादा-से-ज़्यादा एक अपदस्थ और अधिकारहीन हस्ती ठहरा लिया तो सिर्फ़ अख़लाक़ की हिफ़ाज़त के लिए उसको मानना, उससे डरना और उसकी ख़ुशी चाहना सरासर अक़्ल के लिए ख़िलाफ़ है।

उन्नीसवीं शताब्दी में भौतिकवाद अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया। फ़ोक्त (Vegt), बोख़्ज़ (Buchner), सौलें (Czelle), कोमत (Comte),

मोबशात (Mobechoute) और दूसरे दार्शनिकों ने पदार्थ और उसके गुणों के अलावा हर चीज़ के वुजूद को मिथ्या (झूठा) ठहराया। मिल (Mill) ने दर्शन में अनुभववाद और नैतिकता में उपयोगितावाद (Utilitarianism) को बढ़ावा दिया है। स्पेंसर (Spencer) ने दार्शनिक प्रगतिवाद और सांसारिक व्यवस्था के खुद से पैदा होने और ज़िन्दगी के आप से आप शुरू हो जाने का दृष्टिकोण पूरी ताक़त के साथ पेश किया। जीव-विज्ञान (Biology), शरीरविज्ञान (Physiology), भूविज्ञान (Geology) और प्राणीविज्ञान (Zoology) वग़ैरा मैदान में नई-नई खोजें व्यावहारिक विज्ञान की उन्नति और भौतिक संसाधनों की बोहतात ने यह विचार पूरी तरह से दिलों में बिठा दिया कि दुनिया आप से आप वुजूद में आई है। किसी ने उसको पैदा नहीं किया। इसकी व्यवस्था आपसे-आप लगे-बंध क़ानूनों के अधीन चल रही है। कोई इसका चलानेवाला नहीं है। दुनिया आप से आप उन्नति की मंज़िलें तय करती रही है। किसी अलौकिक शक्ति का हाथ इस स्वचलित मशीन में काम नहीं कर रहा है। बे-जान पदार्थ में ज़िन्दगी किसी के हुक्म से नहीं पड़ती, बल्कि खुद पदार्थ जब अपनी व्यवस्था में उन्नति करता है तो उसमें ज़िन्दगी आ जाती है। बढ़ना, गति करना, ऐहसास, चेतना, चिन्तन और विचार सब उसी उन्नति-प्राप्त पदार्थ के गुण हैं। पशु और मनुष्य सबके-सब मशीनें हैं, जो प्रकृति के क़ानूनों के अन्तर्गत चल रहे हैं। इन मशीनों के पुर्ज़े जिस तौर से संगठित होते हैं, उसी तौर के काम उनसे ज़ाहिर होते हैं। उनमें कोई अधिकार और कोई आज़ाद इरादा (Free Will) नहीं है। उनकी व्यवस्था का छिन्न-भिन्न हो जाना उनकी ऊर्जा का ख़र्च हो जाना ही उनकी मौत है जो केवल किसी चीज़ का हो जाने के समान है। जब मशीन टूट-फूट गई तो उसके गुण भी ख़त्म हो गए। अब उनके लिए हश्र (परलोक) और पुनः पैदा होने की कोई सम्भावना नहीं।

डार्विन के विकास के सिद्धान्त (Evolution Theory) और भौतिकवाद को मज़बूत करने और दलीलों की बुनियाद पर व्यवस्थित वैज्ञानिक दृष्टिकोण की हैसियत देने में सबसे बढ़कर हिस्सा लिया। उसकी किताब 'ओरिजिन ऑव स्पेसीज़ (Origin of Species) जो सन् 1859 ई. में पहली बार

प्रकाशित हुई, विज्ञान की दुनिया में एक क्रान्ति पैदा करनेवाली किताब समझी जाती है। इसने एक ऐसी तर्कशैली से, जो उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक दिमाग़ों की नज़र में तर्क देने का सबसे बेहतरीन और पूर्ण तरीक़ा था। इस दृष्टिकोण पर प्रामाणिकता की मुहर लगा दी कि संसार की व्यवस्था ख़ुदा के पैग़म्बर के बिना चल सकती है। प्रकृति से ज़ाहिर होनेवाले बदलाव एवं उसके प्रभावों के लिए ख़ुद के क़ानूनों के सिवा किसी और वजह की ज़रूरत नहीं। जीवन की निचली सतह से लेकर उच्च स्तर तक की दुनिया की सभी चीज़ों का उद्विकास एक ऐसी प्रकृति के श्रेणीबद्ध प्रक्रिया का नतीजा है जो अक़्ल और हिकमत से खाली है। इनसान और दूसरे जानदारों को पैदा करनेवाला कोई तत्वदर्शी स्रष्टा एवं खालिक नहीं है, बल्कि वही एक जानदार मशीन जो कभी कीड़े की शक्ल में रंग करती थी, जीवन-संघर्ष, ज़्यादा सही व क़ाबिल चीज़ के बाक़ी रहने के नियम और प्रकृति के चुनाव के नतीजे में समझ और अक़्ल रखनेवाली बोलते-चलते इनसान के रूप में प्रकट हो गई।

यही वह दर्शन और विज्ञान है जिसने पश्चिमी सभ्यता को पैदा किया है। इसमें न किसी ज्ञान व क़ुदरत रखनेवाले ईश्वर के ख़ौफ़ की गुंजाइश है न नबूवत और वह्य वग़ैरा के मार्गदर्शन का कोई वज़न, न मौत के बाद किसी दूसरे जीवन की धारणा, न सांसारिक जीवन के हिसाब-किताब का कोई खटका, न मनुष्य की वैयक्तिक ज़िम्मेदारी का कोई सवाल, न जीवन के पाशुविक उद्देश्य से उच्च किसी उद्देश्य और किसी लक्ष्य की कोई संभावना। यह शुद्ध भौतिक सभ्यता है। इसकी पूरी व्यवस्था ईशपरायणता, सत्यनिष्ठता, सत्य की खोज, ईमानदारी, सच्चाई, भलाई, लज्जा, परहेज़गारी और पवित्रता के इन विचारों से खाली है जिन पर इस्लामी सभ्यता की बुनियाद रखी गई है। इसका दृष्टिकोण इस्लाम के दृष्टिकोण का बिलकुल उलटा है। उसका रास्ता इस रास्ते के लिए ठीक विपरीत दिशा में है जिसे इस्लाम ने अपनाया है। इस्लाम जिन चीज़ों पर इनसानी अख़लाक़ व किरदार और सभ्यता की बुनियाद रखता है, उनको यह सभ्यता जड़ से उखाड़ देना चाहती है और यह सभ्यता जिन बुनियादों पर वैयक्तिक किरदार और

इजतिमाई व्यवस्था की इमारत क़ायम करती है, उनपर इस्लाम की इमारत एक क्षण के लिए भी नहीं ठहर सकती, मानों इस्लाम और पश्चिमी सभ्यता दो ऐसी कश्तियाँ हैं जो बिलकुल विपरीत दिशाओं में चल रही हैं। जो व्यक्ति इनमें से किसी एक कश्ती पर सवार होगा उसे मजबूरन दूसरी कश्ती को छोड़ना पड़ेगा, और जो एक ही समय में उन दोनों पर सवार होगा; उसके दो टुकड़े हो जाएँगे।

इसको दुर्भाग्य के सिवा और क्या कहिए कि जिस शताब्दी में यह नई सभ्यता अपनी भौतिकवादिता, नास्तिकता और अनीश्वरवादिता के चरम को पहुँची, ठीक वही शताब्दी थी जिसमें मराकश से लेकर सुदूर पूर्व तक सारे इस्लामी देश पश्चिमी क़ौमों के राजनीतिक अधिपत्य और उनकी हुक्मरानी अथवा ग़ुलामी में गए। मुसलमानों पर पश्चिमी तलवार और क़लम दोनों का हमला एक साथ हुआ। जिन दिमाग़ों पर शक्तियों के राजनीतिक प्रभुत्व की धाक और डर बैठ चुका था उनके लिए मुश्किल हो गया कि पश्चिम के दर्शन व विज्ञान और उनकी पाली हुई सभ्यता के रौब और दाब से महफ़ूज़ रहते। ख़ास तौर पर उन मुसलमान क़ौमों की हालत और भी ज़्यादा नाज़ुक थी जो सीधे तौर पर किसी पश्चिमी शासन की ग़ुलामी में आ गई थीं। उनको अपने सांसारिक हितों की रक्षा के लिए मजबूर होकर पश्चिमी शिक्षा हासिल करनी पड़ी और क्योंकि यह शिक्षा-प्राप्ति ख़ालिस शिक्षा-प्राप्ति के लिए न थी और इसके अतिरिक्त ग़ुलामी की मानसिकता के साथ पश्चिमी शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त की, इसलिए मुसलमानों की नई नस्लों ने तेज़ी के साथ पश्चिमी विचारों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का असर क़बूल किया। उनकी मानसिकताएँ पश्चिमी साँचे में ढलती चली गईं। उनके दिलों में पश्चिमी सभ्यता बैठती चली गई। उनमें वह आलोचनात्मक दृष्टि पैदा ही नहीं हुई जिससे वे सही और ग़लत को परखते और सिर्फ़ सही को अपनाते। उनमें यह सलाहियत ही न पैदा हो सकी कि आज़ादी और सुदृढ़ता के साथ सोच-विचार करते और अपने तौर पर कोई राय क़ायम करते। इसी का नतीजा हम देख रहे हैं कि इस्लामी सभ्यता जिन बुनियादों पर क़ायम है वे हिल गई हैं। मानसिकताओं का वह साँचा ही बिगड़ गया है जिस इस्लामी तरीक़े पर सोचा और समझा

जा सकता था। पश्चिमी शैली पर सोचने और पश्चिमी सभ्यता के उसूलों पर विश्वास रखनेवाले दिमाग़ों की बनावट ही ऐसी है कि उसमें इस्लाम के उसूल ठीक नहीं बैठ सकते और जब उसूल ही उसमें नहीं समा सकते तो आम मामलों में तरह-तरह के संदेह और नित नई आशंकाएँ पैदा होनी बिलकुल भी अजीब बात नहीं।

इसमें शक नहीं कि मुसलमानों की बहुसंख्या अब भी इस्लाम की सच्चाई पर ईमान रखती है और मुसलमान रहना चाहती है। लेकिन ज़ेहन पश्चिमी विचारों और पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर इस्लाम से पलट रहे हैं और यह रूझान बढ़ता चला जा रहा है। राजनीतिक प्रभुत्व और आधिपात्य के अलावा पश्चिम की ज्ञानात्मक और वैचारिक धाक व दबदबा दुनिया के ज़ेहनों पर छाया हुआ है और उसने निगाहों के अन्दाज़ इस तरह बदल दिए हैं कि देखनेवालों के लिए मुसलमान की नज़र से देखना और सोचनेवालों के लिए इस्लामी ढ़ंग पर सोचना मुश्किल हो गया है। हालात उस वक़्त तक दूर न होंगे जब तक मुसलमानों में आज़ाद विचारक पैदा न होंगे। इस्लाम में एक पुनर्जागरण (Renaissance) की ज़रूरत है। पुराने इस्लामी चिन्तकों और विचारकों का किया हुआ काम अब काफ़ी नहीं। दुनिया अब आगे बढ़ चुकी है। उसको अब उलटे पाँव उन मंज़िलों की तरफ़ वापस ले जाना मुमकिन नहीं है जिनसे वह छः सौ साल पहले गुज़र चुकी है। ज्ञान और कर्म के मैदान में मार्गदर्शन वही कर सकता है जो दुनिया को आगे की ओर चलाए, न कि पीछे की ओर। अतएव अब अगर इस्लाम दोबारा दुनिया का मार्गदर्शक बन सकता है तो उसकी बस वही एक शक्ल है कि मुसलमानों में ऐसे विचार और तहक़ीक़ करनेवाले पैदा हों जो विचारों और नई तहक़ीक़ की ताक़त से उन बुनियादों को ढा दें जिनपर पश्चिमी सभ्यता की इमारत क़ायम हुई है। क़ुरआन की बताई हुई चिन्तनशैली और विचारशैली दुनिया में ज़ाहिरी चीज़ों और हक़ीक़तों की तलाश में चिन्तन मनन के ज़रिए से एक नवीन दर्शन-व्यवस्था की बुनियाद रखें जो ख़ालिस इस्लामी चिन्तन का नतीजा हो। एक नवीन प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science) की इमारत उठाएँ जो क़ुरआन के डाले हुए चिह्नों पर उठे। ख़ुदा के इनकार पर आधारित

दृष्टिकोण को तोड़कर ख़ुदापरस्ती पर चिन्तन एवं शोध की बुनियाद क़ायम करें और आधुनिक चिन्तन एवं शोध की इमारत को इस ताक़त के साथ उठाएँ कि वह सारे संसार पर छा जाए और दुनिया में पश्चिम की भौतिक सभ्यता के बजाए इस्लाम की पूर्ण सभ्यता का बोलबाला हो। यह जो कुछ कहा गया है उसके मतलब और मक़सद को इस मिसाल के ज़रिए समझिए कि दुनिया मानो एक रेलगाड़ी है जिसको चिन्तन एवं शोध व खोज का इन्जन चला रहा है और चिन्तन व विचार एवं शोध व तहक़ीक़ करनेवाले लोग उस इन्जन के ड्राइवर हैं। यह गाड़ी हमेशा उसी दिशा पर सफ़र करती है जिस दिशा पर ड्राइवर उसको चलाते हैं। जो लोग उसमें बैठे हुए हैं वे मजबूर हैं कि उसी ओर जाएँ जिस ओर गाड़ी जा रही है, चाहे वह उस ओर जाना चाहें या न जाना चाहें। यदि गाड़ी में कोई ऐसा यात्री बैठा है जो उसपर नहीं जाना चाहता तो वह उससे ज़्यादा कुछ और नहीं कर सकता कि चलती हुई गाड़ी ही में बैठे-बैठे अपनी सीट की दिशा आगे के बजाए पीछे या दायीं या बायीं तरफ़ फेर दे। लेकिन बैठने की दिशा बदल देने से वह अपने सफ़र की दिशा नहीं बदल सकता। यात्रा की दिशा बदलने की सूरत इसके अलावा और कोई नहीं कि इन्जन पर क़ब्ज़ा किया जाए और उसकी रफ़तार को उस दिशा में फेर दिया जाए जिधर वे जाना चाहते हैं। इस समय जो लोग इन्जन पर क़ब्ज़ा किए हुए हैं वे सब ईश्वर (ख़ुदा) से फिरे हुए हैं और इस्लामी चिन्तन से वंचित हैं। इसलिए गाड़ी अपने यात्रियों को लिए हुए नास्तिकता और भौतिकवादिता की ओर दौड़ी चली जा रही है और सब यात्री मजबूर होकर इस्लाम की मंज़िल से दूर और दूरतर होते चले जा रहे हैं। अब इस गति को बदलने के लिए ज़रूरत है कि ख़ुदापरस्तों में से कुछ बहादुर लोग उठें और संघर्ष करके इन्जन को उन नास्तिकों के हाथों से छीन लें। जब तक यह न होगा, गाड़ी की दिशा न बदलेगी और हमारे झुँझलाने, बिगड़ने और शोर मचाने के बावजूद वह उसी रास्ते पर सफ़र करती रहेगी जिस पर ख़ुदा अनजान ड्राइवर उसको चला रहे हैं।

—:—